Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

नागार्जुन के उपन्यासों में स्त्री पात्रों की भूमिका

श्रीमती गंगा *

*** शोधार्थी (हिन्दी) बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.) भारत**

प्रस्तावना – नागार्जुन को हम आज बाबा, वैद्यनाथ मिश्र या आधुनिक युग का कवि कहते है, उनके साहित्य में अंगारों सा ताप, जाति, ऊँच–नीच तथा आत्मीयता से भरा व्यक्तित्व उभर कर आता है। नागार्जुन का जन्म, उनके ननिहाल सतलखा ग्राम पोस्ट मधुबनी जिला दरभंगा में 30 जून 1911 को हुआ था। उनके पिता का नाम श्री गोकुल मिश्र तथा माता का नाम उमादेवी था। सामाजिक चेतना, वैचारिक प्रतिबद्धता और अभिव्यक्ति कौशल की दृष्टि से इनकी रचनाएं अद्भुत है। हिन्दी कविता को छायावादी संस्कारों से मुक्त कर उसके सहज विकास की एक दिशषा निश्चित करने में इनका बहुत बड़ा योगदान रहा है, अपनी अभावग्रस्त पारिवारिक स्थिति होने के बावजूद वे सदैव संघर्ष करते हुए भी मस्त यायावर, जिजीविषा से भरपूर जीवन जीने वाले बाबा नागार्जुन को सभी हिन्दी के प्रगतिशील कवि के रूप में ज्यादा जानते पहचानते है, बाबा नागार्जुन ने कई उपन्यास, कहानियाँ, अनेक निबंध, संस्मरण, डायरी, नाटकों की रचना की है। बाबा नागार्जुन का अनुभव – संसार इतना गहरा कहने की अभिलाषा इतनी सघन और संवेदशीलता इतनी तीव्र थी कि उन्हें अपने कथन पर अधिक जोर देकर कह देने की जितनी तीव्र धुन थी, उतनी कैसे और कितना कह दें इसकी नहीं। फलस्वरूप कुछ आलोचक उनकी रचनाओं में शैलीगत कसावट की कमी को रेखांकित करते हैं। संस्कृत, हिन्दी, मैथिली, बंगला, पालि, प्रजाबी, गुजराती आदि भाषाओं के जानकार बाबा को भाषा के प्रति गहरा लगाव था। बाबा नागार्जुन की रचना में भी भाषा की सहजता, सरलता, सजगता व पात्रतानुकूलता दिखाई देती है। उच्च वर्ग से लेकर निम्न वर्ग, ग्रामीण नागरिक, स्त्री–पुरूष के भावगत मानसिक पार्थक्य को वे बखूगी व्यक्त करते हैं, उनकी भाषा यथार्थ जीवन संदर्भो की भाषा है, उनके उपन्यासों की भाषा संरचना में तत्सम, तद्भव, अरबी, फारसी, अंग्रेजी, लाक्षणिक शब्दों का प्रयोग भी बखूबी हुआ है। घुट–घुट कर मरना नहीं, मर–मर कर भी जीने का संकल्प, अदम्य जिजीविषा, संगठित होकर लड़ने, रूढ़ियों को तोड़कर आगे बढ़ने, चेतन होने का भाव उनकी रचनाओं के कथ्य में **गुम्फित** है, उनका कथन यथार्थ का वर्णन करके मात्र रूक नहीं जाता अपितु विकल्प खोजता दिखाई देता है। ऐसे बाबा शारीरिक रूप से आज इस संसार में चाहे न हों, पर उनके विचार, उनकी संघर्ष–भावना व आस्था उनकी रचनाओं के माध्यम से आगामी पीढ़ियों तक कायम रहेगी।

शोध पत्र का उद्देश्य :

1. नागार्जुन जी का जीवन परिचय।
2. व्यक्तित्व एवं कृतित्वों को जानना।
3. बाबा नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में स्त्री के कौन–कौन से आयामों को अंकित किया है? यह जानना।
4. बाबा नागार्जुन के उपन्यासों में महिलाओं के विकास हेतु सामाजिक चेतना को समझना।
5. नागार्जुन के उपन्यासों में स्त्री चेतना एवं उसके विकास के बारे में जानना।
6. सामाजिक क्रांति में स्त्री का योगदान।
7. संगठित समाज की परिकल्पना में स्त्री का योगदान।

नागार्जुन के उपन्यासों की समीक्षा

उनका पहला उपन्यास सन् 1948 में प्रकाशित हुआ जिसका नाम **'रतिनाथ की चाची'** था। रतिनाथ की चाची उपन्यास मिथिलांचल की विधवा नारियों की दयनीय दषा को अभिचित्रित करता है, साथ ही यह उपन्यास प्रेम, वात्सल्य और राग–द्वेष की अनुभूतियों से सम्मुक्त मानव की कमजोरियों और उन कमजोरियों के बीच से उपजी ताकत को रेखांकित करता है, इस उपन्यास में बाबा नागार्जुन ने विधवा जीवन की त्रासदी को अभिव्यक्त किया है। इस उपन्यास में मुख्य पात्र के रूप में रतिनाथ की विधवा चाची गौरी की शारीरिक, मानसिक यंत्रणा को चित्रित किया गया है उपन्यास में विधवाओं की दयनीय अवस्था एवं उनके शारीरिक, मानसिक तथा आर्थिक शोषण को रूपांतरित किया गया है। गौरी के संघर्षों की समाप्ति उसकी मृत्यु के साथ ही होती है। इसमें बाबा नागार्जुन ने मिथिला के रहन सहन, सामाजिक जीवन व वहाँ की संस्कृति को उकेरते हुए अनमेल विवाह, विधवा–समस्या, जाति प्रथा, पिछड़ापन आदि समस्याओं को अपने व्यक्तिगत जीवन अनुभवों के आधार पर अत्यंत संवेदनशील वर्णन किया है। गौरी का कहना था– 'हे भगवान, अगले जन्म में मैं भले चुहिया होऊँ, भले ही नेवला, मगर चेतनामय इस मानव समाज में फिर कभी न पैदा होऊँ।' गौरी का यह कथन समाज पर करारा व्यंग्य है। रतिनाथ की चाची उपन्यास की अनेक घटनाएँ नागार्जुन के अपने जीवन से सम्बद्ध घटनाएँ है। यह भी माना जाता है कि यह एक तरह से बाबा की अपनी चाची को श्रद्धांजलि है।

रतिनाथ की चाची नामक उनके उपन्यास से भी ऐसा ही आभास होता है, इसमें आठ–दस साल की मासूम रतिनाथ की चाची की करूण कथा कही गई है, पर सिर्फ चाची का जीवन ही इस उपन्यास में अभिव्यक्त नहीं हुआ है, इसमें पूरे मिथिलांचल का ग्रामीण जीवन भी प्रतिबिंबित हुआ है, एक और बात जो उपन्यास को कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण बनाती है, इस उपन्यास की कथा रतिनाथ के माध्यम से व्यक्त हुई है। रतिनाथ ने अपने ग्रामीण परिवेशष को जैसा अनुभूत किया, वहीं यथार्थ बनकर पाठक के सामने आया है। वह व्यक्ति के नजरिये से ही सोचता है, पर अपने परिवेश से

उसे गहरा मोह है, उसकी समझ, नासमझी, अपरिपक्वता और संस्कार पाठकों के समक्ष हैं, उनका व्यर्थ उदात्तीकरण नहीं किया गया है।

बाबा का दूसरा उपन्यास **'बलचनमा'** सन् 1952 में प्रकाशित हुआ, इस उपन्यास में स्वातंत्रयोत्तर भारत के शासक-शोषक वर्ग की काली करतूतों से उत्पन्न विडम्बनाजनक कटु यथार्थ को उसके शोषण का शिकार होते ईमानदार, साधनहीन आम जनता, मजदूर, किसान की पीड़ा को चित्रित किया गया है। हम आये दिन होटलों में काम करते, बोझा उठाते, रिक्षा खींचते, पटाखे बनाते, घरेलू नौकर एवं बाल मजदूरों के बारे में पढ़ते या सुनते है। इस उपन्यास का नायक **बलचनमा** भी बचपन से ही बाल मजदूर बन गया है। बाल मजदूरों की इन दिनों बड़ी चर्चा है लेकिन अभाव, गरीबी किस तरह बच्चों को मजदूरी करने को विवशष कर रही है इसका चित्रण इस उपन्यास में किया गया है। **बलचनमा किसान जीवन के अभावों, दर्द व विषमताओं का भी मूर्तिमान रूप है।** यह आम होते हुए भी तब खास बन जाता है जब वह संघर्ष की राह पर चलने का निर्णय करता है। प्रेमचंद का होरी ग्राम संस्कृति के मात्र ध्वंसावशेष को बताता है, वहां बलचनमा भावी निर्माण का स्वप्न जगाता है गांव से नगर की ओर बड़ी आशा, आकांक्षा, उम्मीद से देख रहे व्यक्ति का अंत में नवीन अनुभूति लेकर नगर से गांव लौटना प्रभावकारी है। इसके द्वारा लेखक ने पाठक और समाज में बड़ा ही सुन्दर स्वप्न संजोया है, अपनी जड़ और जमीन की ओर पुन: वापस लौटने का।

सन् 1953 में **'नई पौध'** के नाम से प्रकाशित नागार्जुन का उपन्यास पहले मैथिली में **'नवतुरिया'** नाम से लिखा गया था। इसमें मिथिला के पांचवे-छठवें दशक का परिवेश लिखा हुआ है। गरीबी से परेशान होकर कन्याओं को किसी को बेच देने की या उम्र दराज व्यक्तियों के हाथ बांध देने की सामाजिक आर्थिक समस्या ने लेखक को विचलित किया है, यह स्थिति इस उपन्यास की पृष्ठभूमि बन गयी। इसमें दहेज-प्रथा, अनमेल-विवाह और नारी विक्रय का यथार्थ अंकन हुआ है। जब 60 वर्षीय चतुरानन चौधरी 14 वर्षीय बिससेरी से विवाह करना चाहता है, तो गांव के नवयुवक एकजुट होकर उसका विरोध ही नहीं करते बल्कि चौधरी को बारात सहित भगा भी देते हैं और बिसेसरी का विवाह युवा वाचस्पति से करवाते हैं, यह नयी पौध रुढ़ियों के विरूद्ध विद्रोह को दिखाता है।

'दुखमोचन' उपन्यास का प्रकाशन 1956 के जुलाई अगस्त और सितम्बर माह में आकाशवाणी के लखनऊ प्रयाग केन्द्र ने तेरह किश्तों में समग्र रूप से प्रसारित किया था। उपन्यास का नायक दुखमोचन एक आदर्श पात्र है। इस उपन्यास को कथावस्तु अनेको घटनाओं, प्रसंगों के माध्यम से आगे बढ़ती है। दुखमोचन व्यवसाय के लिए कलकत्ता जाते हैं और पांच वर्ष के बाद वापस अपने गांव लौट आने पर अपने गांव टमका कोईली का नवनिर्माण करना चाहते हैं। दुखमोचन के दो भाई थे सुखदेव और नारायण। तीनों का विवाह हो चुका था। दुखमोचन की दो बेटियां थी। पांच वर्ष पूर्व ही उनकी पत्नी का अवसान हो चुका था। सुखदेव की पत्नी सम्पन्न परिवार की होने से अपने मायके में ही रहा करती थी। नारायण की पत्नी और बच्चे गांव में रहते थे, वह स्वयं घर से दूर सरकारी विभाग में था, परिवार के लिए तन, मन, धन समर्पित कर देने वाले दुखमोचन की विधवा मामी गांव में रहती थी, टमका कोईली में मलेरिया और कालाजार ने तबाही मचायी तब चर्मरोग फैलने पर दुखमोचन ने नेताओं अफसरों, मेडिकल कॉलेज के अध्यापकों व छात्रों की सहायता से गंधक, नारियल के तेल और नीम के साबुन की व्यवस्था करवाई। गांव में आग लगने पर बेघर लोगों के पुर्नवसन पर भी बहुत परिश्रम करते हैं, इस प्रकार उपन्यास में दुखमोचन के प्रयासों से गांव के नवनिर्माण की कथा वर्णित की गई है।

1957 में प्रकाशित हुआ उपन्यास **'वरूण के बेटे'** आजादी के बाद भी गांवों की गांव के निम्न वर्ग एवं निम्न जाति के लोगों की बदहाली में कुछ खास परिवर्तन नहीं हुआ। इस बात को बिहार के **'मलाही गोढियारी'** गांव के **मछुआरों की इस संघर्ष कथा को नागार्जुन ने चित्रित किया है**, जिन्हें आजादी नहीं मिली, ऐसे संकटों और अभावों से ग्रस्त मछुआरों की इस स्थिति के कारण है वे जमींदार जो जलाशयों पर कब्जा कर बैठे थे। बाबा बटेसरनाथ के टुनाई पाठक की तरह यहां भी पोखर व चरागाह हड़पते है - बेचते जमींदार है, मछुआरों की व्यथा कथा कहते कहते लेखक जमींदारों के विरूद्ध भोला, मंगल, माधुरी, मांझी जैसे चरित्र जमींदारों से मुकाबला करने के लिए खड़ा करता जाता है। ये चरित्र बाबा बटेसरनाथ और बलचनमा के चरित्रों के परम्परा में एक और कड़ी बन जाते हैं, जो व्यवस्था के विरूद्ध संघर्ष और क्रांति के लिए प्रयत्नरत हैं।

लेखक मानते है कि इस संसार में कई नरक हैं, उनमें से एक **'कुम्भीपाक'** है, पर 1960 में प्रकाशित बाबा के उपन्यास 'कुम्भीपाक' में वर्णित वह कुम्भीपाक नहीं है, अपितु इसमें नगरों- महानगरों एवं निम्न मध्यवर्गीय समाज में अनेक प्रकार के शोषण के शिकार होती स्त्रियों की नारकीय त्रासदी आदि 'कुम्भीपाक' उपन्यास में चम्पा के इस कथन से स्त्री के दु:ख का अनुमान लगाया जा सकता है, **'नहीं, मैं खुश नहीं हूँ। कोई भी और खुश नहीं है किन्तु।** अच्छे घर की अच्छी बहुओं से जाकर पूछो, वे भी खुश नहीं हैं, जब स्त्री के लिए यूँ भी समाज की विचारधारा संकीर्ण हो, तब हमारे समाज में घर की दहलीज लांघनेवाली नारी के लिए, कुम्भीपाक रुपी नरक में पहुँची नारी के लिए, न कोई सम्मान है, न ही कोई समाधान। बाबा की प्रगतिशील दृष्टि इसी नारी समस्या की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती है, और ऐसी नारियों को कुम्भीपाक के उस दलदल से निकाल कर नए जीवन की ओर प्रयत्नशील दिखाती है।

इस तरह प्रगतिशील नारी चरित्रों के माध्यम से लेखक ने यह सन्देष दिया है कि नारी को अपनी अस्मिता स्थापित करने के लिए अपनी शक्तियों को पहचानकर उनका विकास करना पड़ेगा।

नागार्जुन द्वारा रचित उपन्यास '**हीरक जयंती**' सन् 1961 में प्रकाशित हुआ, इसमें सामाजिक विडम्बनाओं के साथ-साथ राजनीतिक भ्रष्टाचार को बेनकाब करने के लिए लिखा गया है, स्थान-स्थान पर चलने वाले हीरक जयंतियों के समारोह, मात्र स्वहित के लिए कैसे मनाया जाता है, इसका यथार्थांकन इस कृति का वैशिष्ट्य है। इस उपन्यास का मुख्य पात्र **नरपत बाबू एक ऐसा नेता है, जो अपने आप को आम जनता का सेवक बताता है, पर उन्ही का शोषण करता रहता है,** उसी के काले कारनामों का परिचय लेखक ने आत्मकथा के रूप में करवाया है।

1963 में प्रकाशित **'उग्रतारा'** में विधवा उगनी की कथा के माध्यम से लेखक ने एक विवश स्त्री की करूण कथा को नये सिरे से अंकन किया है। वह उस रूढ़िवादी समाज को कटघरे में ला खड़ा करता है, जो स्त्रियों के द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में अपनी योग्यता व कार्यक्षमता को प्रमाणित करने के बावजूद कॉलेजों से पढ़-लिखकर निकली लड़कियों को उनकी प्रतिभा और आजादी को अपनी पुरानी रूढ़िगत मान्यताओं के कारण लील लेता है। लेखक ने यहाँ भी दहेज, अनमेल विवाह के साथ-साथ प्रेम संबंधों की वैधता- अवैधता

जैसी समस्याओं के साथ स्त्री- शिक्षा को महत्व दिया है। इस उपन्यास में नागार्जुन की प्रेम दृष्टि भी अद्भुत समय से बहुत आगे की और क्रांतिकारी थी, उगनी और कामेश्वर के माध्यम से एक क्रांतिकारी विचार उपस्थित करते हुए लेखक ने अपनी प्रगतिशील दृष्टि का परिचय दिया है।

सन् 1968 में राज्यपाल एंड संस, दिल्ली से **'इमरतिया'** और किताब महल इलाहाबाद से 'जमनिया का बाबा' नाम से प्रकाशित उपन्यास नागार्जुन का एक और महत्वपूर्ण उपन्यास है। मैथिली भाषा में 1946 में प्रकाशित यह उनका प्रथम उपन्यास है, इस उपन्यास में **साधु-संतो के कुचक्रों के बीच फंसी भावुक स्त्री इमरतिया की कथा के माध्यम से मठों की दुराचारपूर्ण जिंदगी, धार्मिक अंधविश्वास, साधु-संतो के पाखण्ड का बाबा ने बड़े साहसपूर्ण तरीके से पर्दाफाश किया है।** भारत के लोगों की धर्मांधता और अंधविश्वास का लाभ उठाकर, रामनामी ओढ़े न जाने कितने प्रडितों, सिद्ध-संत, मठाधीशों की काली करतूतें आये दिन चौंकाती रहती हैं, इस उपन्यास में जमींदारी उन्मूलन के साथ जमनिया और लखनौती के दो तीन जमींदारों द्वारा जमीन हथियाने के उद्देश्य से बहुत बड़े भू-भाग पर जमनिया मठ की स्थापना की जाती है। पापी दुराचारी, हत्या के अभियोग से भागते-फिरते मुसलमान जुलाहे की महंत के रूप में नियुक्ति के बावजूद इसका वास्तविक संचालन जमींदारों, तस्करों, व्यापारियों के हाथ में है। मठ के तस्करी- व्यापार का केन्द्र हो जाने की इस कथा में बाबा ने कुकृत्यों में लिप्त ऐसे मठों व पाखंडी संतों पर व्यंग्य किया है। धार्मिक भ्रमजाल का ऐसा विष्लेषण हिन्दी के बहुत कम उपन्यासों में हुआ है।

पहले मैथिली में 1946 में रचित पारो का हिन्दी अनुवाद 1975 मुं. कुलानन्द मिश्र ने किया। **'नई पौध'** की तरह इस उपन्यास के मूल में पुन: बेमेल विवाह, दहेज, बाल-विवाह की समस्याओं को दर्शाया गया है। साथ ही इस उपन्यास में मिथिला के रीति-रिवाजों व घटनाओं का सुन्दर अंकन भी किया है। नारी हृदय की सम्पूर्ण वेदना को इस उपन्यास में बड़ी ही मनोवैज्ञानिकता से चित्रित किया गया है। नायिका पारो परम्परावादी पत्नी की तरह समझौता करने को तैयार नहीं है, उसकी ईश्वर से यह प्रार्थना उसका वेदना की मार्मिकता की द्योतक है, 'हे भगवान! लाख दण्ड दे, मगर फिर औरत बनाकर इस देश में जन्म नहीं दे।' **पारो, वरूण के बेटे, उग्रतारा** आदि उपन्यासों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि **वे हमारे समाज के उन कोढ़ों, कलंकों को पकड़ते हैं, जो बरसों से हमारी चिंता का कारण बने हुए हैं।**

सन् 1979 में प्रकाशित बाबा नागार्जुन के अंतिम उपन्यास **'गरीबदास'** में बाबा नागार्जुन ने वर्ग-संघर्ष के स्थान पर शोषित जनता की मुक्ति हेतु समन्वयवाद का मार्ग दिखाया है, नायक गरीबदास अपने आदर्श बाबासाहेब अम्बेडकर के मार्ग का अनुसरण कर दलित उत्थान के अनेक प्रयास करता है। लेखक ने इसमें भी सामाजिक समरसता व विकास के अपने स्वर को वाणी दी है। स्वाधीनता के पश्चात् देशवासियों को जिस मुक्ति, समता और शांति की कामना थी, वह खण्डित हुई तथा राजनीतिक पतन, चरित्र-विघटन, आर्थिक विषमता, महंगाई, **मानव संबंधों एवं मूल्यों में हुए ह्रास और नैतिक पतन ने मोहभंग की स्थितियाँ उत्पन्न कर दी थीं।** हत्या-लूटपाट, विद्वेष, घृणा, अविश्वास, शोषण भ्रष्टाचार जैसे विभिन्न विकराल समस्या हमारे विकास, हमारी उन्नति को ग्रस रहे थे। इस यथार्थ का स्वाभाविक अंकन स्वातन्त्रयोत्तर उपन्यासों में हुआ। नागार्जुन जैसे प्रगतिशील रचनाकारों ने इसके साथ-साथ तानाशाही, शोषण कारी शक्तियों के खिलाफ जनमत तैयार करने का कार्य, विरोध-विद्रोह और संघर्ष की प्रेरणा देने का कार्य भी अपने उपन्यासों के माध्यम से किया। नागार्जुन के लगभग सभी उपन्यासों में इन मुद्दों को देखा जा सकता है, जहाँ तक विचार का सम्बन्ध है, उन्होंने वर्ग-संघर्ष के **प्रेरक मार्क्सवाद को महत्वपूर्ण माना, परन्तु देशहित व जनहित से बढ़कर उससे सर्वोपरि उनके लिए कुछ नहीं था।** एक लेखक होने के नाते उनकी रचनाओं में सामान्यजन के **प्रति, शोषितों के प्रति पक्षधरता साफ़-साफ़ दिखाई देती है।**

शोध प्रविधि – कोई भी शोध कार्य बिना क्रिया विधि एवं शोध प्रविधि के बिना सम्भव नहीं हो सकता इसलिए शोधकर्ता को कोई एक विधि के द्वारा शोध कार्य करना आवश्यक है। अनुसंधान की शोध प्रविधि में क्रियात्मक शोध के साथ विश्लेषणात्मक शोध प्रविधि का प्रयोग करके शोध समीक्षा प्रस्तुत करना होता है। शोध प्रविधि में हमें शोध कार्य को प्रस्तुत करने में नागार्जुन के उपन्यासों का गहन अध्ययन करना है, साथ ही उनके उपन्यासों में स्त्री पात्रों का विश्लेषण करना है। नागार्जुन के उपन्यासों में स्त्रियां हर परिस्थिति का सामना करके समाज के सामने उठ खड़ी हुई है तथा नागार्जुन ने स्त्रियों को कभी बेबस कमजोर नही होने दिया है। इन सभी समस्याओं का विस्तृत विश्लेषण करना शोध कार्य की मुख्य प्रविधि है।

बाबा नागार्जुन को ग्रामीण - जीवन, वहाँ के वातावरण, वहाँ की समस्याओं की गहरी जानकारी थी। स्वयं उस परिवेश में रहने के कारण वह सब उनका देखा-भोगा हुआ था। इसी का असर उनकी रचनाओं में ग्रामीण-जीवन के चित्रण के रूप में दिखाई पड़ता है। इसके कारण आँचलिकता भी उनके उपन्यासों में दिखाई देती है, **परन्तु यह आँचलिकता 'मैला आँचल' की तरह परम्परागत रूप में नहीं है क्योंकि उनका लक्ष्य अंचल का चित्रण नहीं अपितु उस शोषित- पीड़ित समाज व उनके संघर्षों का अंकन है,** जिसे उन्होंने अपने अंचल से उठाकर अपने उपन्यासों में प्रतिष्ठित कर दिया। बलचनमा हो, इमरतिया हो या दु:खमोचन हो सभी पात्र अपने - अपने परिवेश में संघर्षरत हैं । नागार्जुन की इन रचनाओं में विशेषकर मिथिलांचल, वहाँ की प्रकृति, लोकजीवन, वहाँ के लोकविश्वास और परम्पराएँ मूर्तिमान हो उठे है। शोभाकांत जी के शब्दों में **'नागार्जुन के उपन्यास अंचल विशेष पर केन्द्रित होते हुए भी किसी संकीर्ण अर्थ में आंचलिक नहीं हैं, वे सम्पूर्ण देश या जमाने की सच्चाई को ठोस रूप में सामने लाते हैं।'**

निष्कर्ष- संसार को इतना गहरा कहने की उनकी अभिलाषा इतनी सघन और संवेदनशीलता इतनी तीव्र थी कि उन्हें अपने कथन पर अधिक जोर देकर कह देने की जितनी तीव्र धुन थी, उतनी कैसे और कितना कह दें इसकी नहीं। फलस्वरूप कुछ आलोचक उनकी रचनाओं में शैलीगत कसावट की कमी को रेखांकित करते हैं। संस्कृत, हिन्दी, मैथिली, बंगला, पालि, प्रजाबी, गुजराती आदि भाषाओं के जानकार बाबा को भाषा के प्रति गहरा लगाव था, यूँ भी आधुनिक कथा साहित्य में भाषागत उदारता देखी जाती है और आलोचक कृत्रिम भाषा की अपेक्षा सहज भाषा के प्राकृत रूप का प्रयोग ही श्रेयस्कर मानते हैं। बाबा नागार्जुन की रचना में भी भाषा की सहजता, सरलता, सजगता व पात्रतानुकूलता दिखाई देती है। उच्च वर्ग से लेकर निम्न वर्ग, ग्रामीण, नगरीय, स्त्री-पुरूष के भावगत मानसिक पार्थक्य को वे बखूबी व्यक्त करते हैं, उनकी भाषा यथार्थ जीवन संदर्भों की भाषा है। उनके उपन्यासों की भाषा संरचना में तत्सम, तद्भव, अरबी, फारसी, अंग्रेजी एवं लाक्षणिक शब्दों का प्रयोग भी बखूबी हुआ है। घुट-घुट कर मरना नहीं,

मर–मर कर भी जीने का संकल्प, अदम्य **जिजीविषा, संगठित होकर लड़ने, रूढ़ियों को तोड़कर आगे बढ़ने, चेतन होने का भाव उनकी रचनाओं के कथ्य में शामिल है,** उनका कथन **यथार्थ का वर्णन करके मात्र रूक नहीं जाता** बल्कि विकल्प खोजता प्रतीत होता है। ऐसे बाबा इस संसार में चाहे शारीरिक रूप से न हों, पर उनके विचार, उनकी संघर्ष–भावना व आस्था उनकी रचनाओं के माध्यम से आगामी पीढ़ियों तक कायम रहेगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. रतिनाथ की चाची, नागार्जुन, राजकमल प्रकाशन सन्1998 ।
2. बाबा बटेसरनाथ, नागार्जुन, राजकमल प्रकाशन सन् 1954, ।
3. कथाकार नागार्जुन, डॉ. जगन्नाथ प्रडित राधा पब्लिकेशन, 2005।
4. कुम्भीपाक, नागार्जुन, राजकमल प्रकाशन सन् 1987।
5. नागार्जुन, सुरेशचन्द्र त्यागी, आशिर प्रकाशन।
6. उग्रतारा, नागार्जुन, राजकमल प्रकाशन , सन् 1987।
7. पारो, नागार्जुन।
8. नागार्जुन: सम्पूर्ण उपन्यास– भाग–2, प्र.सं. 1994 यात्री प्रकाशन, दिल्ली।
9. नागार्जुन के उपन्यास, डॉ. संतोष कौल काक, शोधगंगा।
10. हिन्दी का गद्य साहित्य, नवम् संस्करण, जनवरी 2014, डॉ. रामचन्द्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन विशालाक्षी भवन, वाराणसी।
11. नागार्जुन रचनावली, शोभाकांत, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।

****